

भारत में जनजाति, विकास और प्रकृति

- डॉ. अर्चना त्रिपाठी

वनों, पहाड़ों, घाटियों और प्रकृति की गोद में रहने वाले समुदायों को जनजाति या आदिवासी समाज कहा जाता है। मानव सभ्यता के विकास से बहुत पहले से ये समुदाय धरती के उन क्षेत्रों में बसे हुए हैं जहाँ जंगल, पर्वत, नदियाँ और प्राकृतिक संसाधनों की भरपूर उपलब्धता रही है। पृथ्वी का एक बड़ा भाग आज भी पहाड़ों और वनों से आच्छादित है, और इन क्षेत्रों में जनजातीय समाज का जीवन लंबे समय से विकसित होता आया है।

जब आधुनिक समाज नगरों, उद्योगों और तकनीकी जीवनशैली की ओर बढ़ाए तब जनजातीय समाज ने प्रकृति के साथ संतुलित, सरल और सामुदायिक जीवन को महत्व दिया। यही कारण है कि उन्हें सही अर्थों में वनवासी कहा जाता है, क्योंकि जंगल केवल उनका निवास स्थान नहीं, बल्कि उनका जीवन, संस्कृति, विचार, अर्थव्यवस्था और अस्तित्व का आधार है। जंगल उनके लिए भोजन का साधन है, औषधि का स्रोत है, आस्था का केंद्र है और पीढ़ियों से संचित जीवन ज्ञान का भंडार है।

जनजातीय समुदायों ने कभी भी बाहरी सभ्यता के दिखावटी विकास को अपने जीवन का लक्ष्य नहीं बनाया। उन्होंने अपने श्रम, अनुभव और प्रकृति से सीखकर जीवनयापन की अनेक विधियाँ विकसित कीं। खेती की परंपरागत पद्धतियाँ, बीजों का संरक्षण, वनोपज का संग्रह, औषधीय पौधों का ज्ञान, जल स्रोतों का उपयोग तथा मौसमी परिवर्तनों की पहचान जैसी अनेक उपयोगी विधाएँ उन्होंने स्वयं विकसित कीं। महुआ, साल, तेंदूपत्ता, शहद, चिरौंजी, लाख, बाँस और अनेक वन उत्पादों के माध्यम से वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहे।

उनकी आवश्यकताएँ सीमित रही हैं। वे उतना ही लेते हैं जितनी जीवन के लिए आवश्यकता हो। अधिक संग्रह, असीम उपभोग और प्रकृति के शोषण की प्रवृत्ति उनके स्वभाव में नहीं रही। कम में संतोष करना, साझा जीवन जीना, प्रकृति से लेना और उसे वापस लौटाना कृयह उनकी जीवन दृष्टि रही है। यही कारण है कि जनजातीय समाज ने सदियों तक मनुष्य और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

प्रकृति के साथ उनका संबंध केवल उपयोग का नहीं, बल्कि आत्मीयता का है। वे जंगल को माता, धरती को धरोहर, नदी को जीवनधारा और पर्वत को संरक्षक मानते हैं। मौसम के बदलाव, पशु.पक्षियों के व्यवहार, हवा की दिशा, बादलों की चाल और मिट्टी की गंध से वे आने वाले परिवर्तनों का अनुमान लगा लेते हैं। यह अनुभवजन्य ज्ञान पीढ़ियों से उनके जीवन का हिस्सा रहा है।

भारतीय परंपरा में भी यही विचार मिलता है कि प्रकृति पर किसी एक व्यक्ति का अधिकार नहीं है। हमारे शास्त्रों और पुराणों में प्रकृति को पूजनीय माना गया है। श्रीमद्भगवत में कहा गया है कि धरती और आकाश के बीच जो भी प्राकृतिक संपदा है, वह ईश्वर प्रदत्त है। मनुष्य का अधिकार केवल उतने पर है जितना उसके जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक है। यही भावना बिना किसी ग्रंथ को पढ़े आदिवासी समाज के भीतर स्वाभाविक रूप से जीवित रही है। वे भूमि को निजी स्वामित्व की वस्तु नहीं, बल्कि सामुदायिक धरोहर मानते हैं।

भारत की जनगणना 2011 के अनुसार देश में जनजातीय जनसंख्या लगभग 10 करोड़ 42 लाख से अधिक है, जो कुल जनसंख्या का लगभग 8% प्रतिशत है। यह समाज अत्यंत विविधतापूर्ण है। खान.पान, पहनावा, भाषा, बोली, रहन.सहन, धार्मिक मान्यताएँ और सांस्कृतिक परंपराएँ क्षेत्रानुसार भिन्न.भिन्न हैं। भारत में सैकड़ों जनजातीय समूह निवास करते हैं, जिनकी अपनी विशिष्ट पहचान है।

जनजातीय समुदायों की पहचान कुछ प्रमुख विशेषताओं के आधार पर की जाती रही है।

1. वनों पर निर्भरता
2. परंपरागत जीवन शैली
3. सीमित संसाधनों पर आधारित अर्थव्यवस्था
4. अपेक्षाकृत निम्न साक्षरता दर
5. विशिष्ट सामाजिक.सांस्कृतिक ढाँचा

भारत के विभिन्न राज्यों में जनजातीय समुदाय बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओडिशा, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना तथा पूर्वोत्तर भारत के राज्यों नागालैंड, मिजोरम, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर और अरुणाचल प्रदेश में इनकी उल्लेखनीय उपस्थिति है। मध्यप्रदेश में गोंड, भील, बैगा और कोरकू प्रमुख हैं। छत्तीसगढ़ में गोंड, मुरिया, हल्बा और उरांव समुदाय निवास करते

हैं। झारखंड में संथाल, मुंडा, हो और बिरहोर प्रमुख हैं। ओडिशा में कोंध, बोंडा, जुआंग और सवरा समुदाय पाए जाते हैं। पूर्वोत्तर भारत की जनजातियाँ अपनी भाषा, वेशभूषा और सांस्कृतिक परंपराओं के लिए विशेष रूप से जानी जाती हैं।

इन सभी जनजातियों की अपनी विशिष्ट भाषा, संस्कृति, परंपराएँ, वेशभूषा और प्रकृति से जुड़ी जीवन शैली है, जो भारत की सांस्कृतिक विविधता को समृद्ध बनाती है। भारतीय संविधान की पाँचवीं और छठी अनुसूचियों में इनके अधिकारों, स्वशासन और सांस्कृतिक संरक्षण के लिए विशेष प्रावधान किए गए हैं।

यद्यपि स्वतंत्र भारत की सरकारों ने जनजातीय विकास के लिए अनेक योजनाएँ चलाई हैं, फिर भी आदिवासी समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी स्वयं को उपेक्षित अनुभव करता है। इसका कारण केवल वर्तमान नहीं, बल्कि इतिहास में निहित है। औपनिवेशिक शासन के समय ब्रिटिश सत्ता ने जनजातीय जीवन पर गहरा आघात पहुँचाया। जंगलों पर सरकारी नियंत्रण स्थापित किया गया, पारंपरिक अधिकार छीने गए, भूमि अधिग्रहण हुआ और वनवासियों को उनके ही संसाधनों से दूर कर दिया गया।

ब्रिटिश शासन ने जनजातियों को शूअसभ्यशू मानकर उन पर अपनी सभ्यता, कानून, बाजार व्यवस्था और प्रशासनिक ढाँचा थोपने का प्रयास किया। जंगलों को राजस्व और व्यापार का साधन बनाया गया। लकड़ी, खनिज और अन्य वन उत्पादों के दोहन के लिए बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप शुरू हुआ। जिन वनों से आदिवासी जीवन चलता था, वे अब शासन और पूँजी के नियंत्रण में चले गए।

इस शोषण के विरुद्ध जनजातीय समाज ने अनेक विद्रोह किए। संथाल विद्रोह ;1855, कोल विद्रोह, भील आंदोलन, मुंडा विद्रोह और बिरसा मुंडा का उलगुलान भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण अध्याय हैं। ये विद्रोह केवल आर्थिक संघर्ष नहीं थे, बल्कि अस्मिता, जल, जंगल, जमीन और स्वतंत्र जीवन के अधिकार की लड़ाइयाँ थीं।

औपनिवेशिक शासन ने जनजातीय क्षेत्रों में सड़कें, पुल, निर्माण कार्य और श्रम आधारित परियोजनाएँ शुरू कीं, परंतु इनका उद्देश्य विकास से अधिक संसाधनों का दोहन था। बाहरी लोगों का प्रवेश बढ़ा, शराबखोरी, शोषण, कर्ज, बंधुआ श्रम और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ बढ़ीं। आदिवासी स्त्रियाँ भी अनेक प्रकार के शोषण का शिकार हुईं। इस प्रकार तथाकथित विकास ने उनके पारंपरिक जीवन को असंतुलित कर दिया।

आज भी जनजातीय समाज के सामने सबसे बड़ा प्रश्न अस्तित्व और पहचान का है। उनकी संस्कृति, भाषा, परंपराएँ, लोककला, सामुदायिक व्यवस्था और प्राकृतिक अधिकार सुरक्षित रहेंकृयह अत्यंत आवश्यक है। विकास का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि उनकी जड़ों को काट दिया जाए। वास्तविक विकास वही है जिसमें उनकी अस्मिता बनी रहे, शिक्षा मिले, स्वास्थ्य सुविधाएँ पहुँचें, रोजगार के अवसर बढ़ें और निर्णय प्रक्रिया में उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो।

भारत सरकार द्वारा जनजातीय समाज के सर्वांगीण उत्थान हेतु अनेक योजनाएँ संचालित की जा रही हैं। एकलव्य मॉडल आवासीय विद्यालयों के माध्यम से दूरस्थ एवं वन क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय बालक.बालिकाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराई जा रही है। इससे वे आधुनिक ज्ञान.विज्ञान से जुड़कर अपने भविष्य को सुदृढ़ बना सकें।

वनाधिकार कानून के अंतर्गत जनजातीय समुदायों को उनके परंपरागत वन क्षेत्रों पर वैधानिक अधिकार प्रदान किए गए हैं, जिससे उनका जीवन, आजीविका और आत्मसम्मान सुरक्षित हो सके। पंचायत ;अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तारद्ध अधिनियम अर्थात पेसा कानून के माध्यम से ग्राम सभाओं को सशक्त बनाया गया है, ताकि स्थानीय संसाधनों, जल, जंगल और जमीन से जुड़े निर्णयों में जनजातीय समाज की प्रत्यक्ष भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

इसके अतिरिक्त कौशल विकास योजनाओं के माध्यम से युवाओं को आधुनिक रोजगारपरक प्रशिक्षण दिया जा रहा है, जिससे वे स्वरोजगार अथवा सम्मानजनक रोजगार प्राप्त कर आत्मनिर्भर बन सकें। स्वास्थ्य अभियानों के अंतर्गत दूरस्थ क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार, टीकाकरण, मातृ.शिशु स्वास्थ्य सेवाएँ, पोषण कार्यक्रम तथा जागरूकता अभियान चलाए जा रहे हैं। स्वावलंबन कार्यक्रमों के माध्यम से महिला समूहों, स्वयं सहायता समूहों तथा लघु उद्यमों को प्रोत्साहन देकर आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है।

इन योजनाओं का उद्देश्य केवल आर्थिक प्रगति नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समान अवसर और सम्मानपूर्ण जीवन की स्थापना है। यदि इन योजनाओं का लाभ अंतिम व्यक्ति तक पहुँचे, तो जनजातीय समाज देश के विकास में और अधिक प्रभावी योगदान दे सकता है।

विभिन्न सामाजिक, धार्मिक एवं स्वयंसेवी संस्थाएँ भी जनजातीय क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य कर रही हैं। वे शिक्षा के प्रसार हेतु विद्यालय, छात्रावास और संस्कार केंद्र चला रही हैं। ग्राम विकास के क्षेत्र में जल

संरक्षण, स्वच्छता, कृषि सुधार, पशुपालन और स्थानीय संसाधनों के समुचित उपयोग पर बल दिया जा रहा है। स्वास्थ्य सेवाओं के अंतर्गत चिकित्सा शिविर, औषधि वितरण, पोषण कार्यक्रम तथा स्वास्थ्य जागरूकता अभियान संचालित किए जा रहे हैं।

स्वरोजगार के क्षेत्र में हस्तशिल्प, लघु उद्योग, वन उत्पाद प्रसंस्करण, कुटीर उद्योग तथा पारंपरिक कलाओं को बाज़ार से जोड़ने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही सांस्कृतिक संरक्षण हेतु लोकनृत्य, लोकगीत, पारंपरिक वेशभूषा, भाषाओं और उत्सवों के संरक्षण का कार्य भी किया जा रहा है, जिससे उनकी सांस्कृतिक पहचान अक्षुण्ण बनी रहे। किन्तु आवश्यकता इस बात की है कि जनजातीय समाज को केवल पिछड़ेपन, अभाव या दया के दृष्टिकोण से न देखा जाए, बल्कि भारतीय सभ्यता की मूल चेतना, प्रकृति-निष्ठ जीवनदृष्टि और सांस्कृतिक विरासत के रूप में समझा जाए। जनजातीय समाज ने हमें सिखाया है कि प्रकृति से प्रेम कैसे किया जाए, जल, जंगल और जमीन को केवल संसाधन नहीं, बल्कि जीवनदाता मानकर उनका संरक्षण कैसे किया जाए।

उन्होंने यह भी सिखाया है कि सीमित साधनों में संतुलित, संतुष्ट और सामंजस्यपूर्ण जीवन कैसे जिया जाए। उनके जीवन में संग्रह की लालसा नहीं, आवश्यकता की मर्यादा और संतुलन का भाव दिखाई देता है।

उन्होंने यह भी दिखाया है कि सामुदायिक सहयोग, परस्पर विश्वास और सहभागिता के आधार पर सशक्त समाज कैसे निर्मित किया जा सकता है। उनके यहाँ परिवार केवल रक्त संबंधों तक सीमित नहीं होता, बल्कि पूरा ग्राम एक विस्तृत परिवार के रूप में देखा जाता है। सुख-दुःख, श्रम और उत्सव सब मिल-जुलकर बाँटे जाते हैं। यही वे जीवनमूल्य हैं जिनकी आज आधुनिक समाज को सर्वाधिक आवश्यकता है।

अतः जनजातियों का विकास तभी सार्थक और स्थायी माना जाएगा, जब वह उनकी मूल भावना, परंपराओं, भाषा, संस्कृति और प्रकृति से जुड़े जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए किया जाए। यदि विकास के नाम पर उनकी पहचान, संस्कृति, भूमि और जीवन-पद्धति को नष्ट कर दिया जाए, तो वह विकास नहीं, विनाश होगा। परंतु यदि विकास उन्हें सम्मान, शिक्षा, स्वास्थ्य, अवसर, आत्मनिर्भरता और निर्णय की स्वतंत्रता प्रदान करे, तो वही सच्ची प्रगति होगी। इसलिए आवश्यक है कि विकास की धारा जनजातीय समाज पर थोपी न जाए, बल्कि उन्हें साथ लेकर, उनकी सहभागिता से, उनकी आवश्यकताओं और

परंपराओं को समझते हुए आगे बढ़ाया जाए। जब जनजातीय समाज अपने स्वाभिमान, संस्कृति और अधिकारों के साथ उन्नति करेगा, तभी भारत की प्रगति भी पूर्ण और समरस मानी जाएगी। वास्तव में जनजातियों का उत्थान केवल एक वर्ग का उत्थान नहीं, बल्कि भारतीय आत्मा के पुनर्जागरण का पथ है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि जनजातीय विकास केवल योजनाओं तक सीमित न रहे, बल्कि उनकी सहभागिता, सम्मान और स्वाभिमान के साथ आगे बढ़े। भारत सरकार द्वारा जनजातीय समाज के उत्थान हेतु शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलंबन, आवास, कौशल विकास तथा अधिकार संरक्षण के क्षेत्र में निरंतर सराहनीय प्रयास किए जा रहे हैं। यदि इन योजनाओं को प्रभावी रूप से जनजातीय क्षेत्रों तक पहुँचाया जाए और उनकी संस्कृति, परंपरा तथा प्रकृति से जुड़े जीवन मूल्यों को सुरक्षित रखते हुए विकास किया जाए, तो यह सच्चे अर्थों में राष्ट्र निर्माण होगा। जनजातियों का उत्थान केवल एक वर्ग की प्रगति नहीं, बल्कि भारत की सांस्कृतिक विरासत को सशक्त बनाने और समरस समाज की स्थापना की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ सूची

1. भारत की जनगणना 2011, भारत सरकार, रजिस्ट्रार जनरल एवं जनगणना आयुक्त, नयी दिल्ली
2. Ministry of Tribal Affairs, Government of India – Annual Report.
3. The Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, 2006.
4. Panchayats (Extension to Scheduled Areas) Act, 1996 (PESA Act).
5. NCERT – Indian Society / Sociology Textbook.
6. Bipan Chandra, India's Struggle for Independence.
7. Ramachandra Guha, The Unquiet Woods.